शब्दार्थसम्बन्धमीमांसा

डॉ. जयमंगल पाण्डेय*

शब्द का प्रयोजन है, अर्थप्रत्यायकता; परन्तु सभी शब्दों से सभी अर्थों का बोध नहीं होता, वरन् सामान्यतः नियत शब्दों से नियत अर्थों का बोध होता है। शब्द को व्यवहार का कारण मानने वाले सभी दार्शनिक इस वस्तु स्थिति को स्वीकार करते हैं। प्रायः ब्रह्यार्थवादी सभी दार्शनिक–सम्प्रदाय शब्द और अर्थ के मध्य किसी सम्बन्ध का अनुसन्धान करते हैं और यह स्वीकार करते है कि सभी अर्थ सब पदों से वाच्य नहीं होते; क्योंकि यही सम्बन्ध निश्चित पद और निश्चित अर्थ के मध्य होता है; अतः यह स्वीकार किया जाता है कि जो अर्थ जिस पद से सम्बद्ध होता है, उस अर्थ का बोध उसी पद से होता है,[1] अन्य असम्बद्ध अर्थ का बोध कथमपि नहीं होता। किन्तु शब्द और तद्वाच्च अर्थ के मध्य स्थित सम्बन्ध के स्वरूप के विषय में विचारकों के मध्य बहुत मतभेद है।

शब्द और अर्थ के मध्य संयोग सम्बन्ध उपपन्न नहीं है; क्योकि संयोग सम्बन्ध केवल मूर्त द्रव्यों में ही हो सकता है; जैसे कुण्ड और बैर का सम्बन्ध। यह सम्बन्ध समवाय नहीं हो सकता; क्योंकि तन्तु और पट के मध्य का जैसा कोई सम्बन्ध शब्द और अर्थ के मध्य प्रत्यक्ष द्वारा गृहीत नहीं होता है। सयोंग ओर समवाय सम्बन्धों पर आश्रित अन्य कोई सम्बन्धी नहीं हो सकते; क्योंकि संयोग और समवाय सम्बन्धों में दोनों सम्बन्धी एक ही देश में उपलब्ध होते है, जबकि शब्द मुख में उपलब्ध होता है और अर्थ भूमि में उपलब्ध होता है। क्षर, मोदक आदि शब्दों के उच्चारण द्वारा मुख से सम्बन्ध अनुमेय भी नहीं है। शब्दोच्चारण में स्थान, करण और प्रयत्न जो शब्दोच्चारण के कारण होते हैं, घटादि अर्थ के देश, भूमि आदि में उपलब्ध नहीं होते; अतः शब्द और अर्थ की एकत्र उपलब्धि असम्भव है।[2]

शब्द और अर्थ के मध्य का सम्बन्ध बीज और अङ्कुर के मध्य वर्तमान कार्यकारण सम्बन्ध, तन्तुवाय और पद के मध्य वर्तमान निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध या कुण्ड और बेर के मध्य वर्तमान आश्रयाश्रयिभाव सम्बन्ध नही हो सकता।[3] साथ ही ऐसा भी नही है कि शब्द और अर्थ के मध्य कोई सम्बन्ध ही न हो, क्योकि ऐसी स्थिति में शब्द से अर्थ की व्यवस्था न रह जायेगी, जबकि शब्द में अर्थ की व्यवस्था तो देखी ही जाती है।[4] तब शब्द और अर्थ के मध्य कौन सा सम्बन्ध है? इस प्रश्न पर वैयाकरणों, आलंकारिकों, मीमांसकों तथा नैयायिकों ने अपने–अपने प्रस्थान पर आधृत समाधन प्रस्तुत किया है।

***वरिष्ठ प्राध्यापक, संस्कृत–विभाग, बी0 एन0 के0 बी0 पी0 जी0 कॉलेज अकबरपुर, अम्बेडकरनगर–224122 (उ0 प्र0)**

वैयाकरणों ने पद और पदार्थ के सम्बन्ध की समस्या पर विस्तार से विचार किया है। ब्याडि से लेकर नागेश तक के सभी वैयाकरणों ने इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत कया है। वैयाकरणों में भर्तृहरि शब्द और अर्थ के दार्शनिक विश्लेषण के सम्बन्ध में सर्वाधिक प्रौढ़ विचार प्रस्तुत करते हैं। इन्होंने शब्दार्थ सम्बन्ध के विषय में अनेकत्व होते हुए भी एकत्व का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। ये शब्द और अर्थ के मध्य अभेद या तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करते हैं।इनके मत में अर्थ शब्द से भिन्न भी होता है और अभिन्न भी होता है। जो अर्थ जिस शब्द से भिन्नाभिन्नात्मक होता है, उस शब्द से उसी अर्थ का बोध होता है। सब अर्थ सब शब्दों से भिन्नाभिन्नात्मक नहीं हो सकते, अर्थात् सब अर्थों और शब्दों के मध्य तादात्म्य नहीं होता; अतः सब शब्दों से सब अर्थों का बोध नहीं होता। अद्वैत वेदान्त के अभिमत कार्यकारण सिद्धान्त विवर्त्तवाद को वैयाकरणों ने शब्द द्वारा अर्थ प्रत्यय का आधार मान लिया है।[5] वैयाकरणों के इस मत को आलटारिकों ने भी स्वीकार किया है। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' के आदि में वाक् और अर्थ के मध्य वर्तमान इसी तादात्म्य सम्बन्ध की ओर इंगित किया है।[6]

जयन्त, मीमांसकों की तरह वैयाकरणों को अभिप्रेत तादात्म्य सम्बन्ध का निषेध करते हैं। शब्द और अर्थ की, चूंकि अलग उपलब्धि होती है; अतः इनके मध्य कभी भी किसी प्रकार एकत्व की सिद्धि नहीं की जा सकती। इस स्थल पर जयन्त, वैयाकरणों के मत में विस्तारपूर्वक विचार नहीं करते, वरन् वे मीमांसकों का सिद्धान्त विस्तार से खण्डित करते हैं; क्योंकि मुख्य प्रतिरोधी सिद्धान्त मीमांसकों का था।[7] अब हम पहले शब्द और अर्थ के मध्य के मीमांसकों को अभिमत सम्बन्ध पर विचार करके न्याय सिद्धान्त पर मीमांसकों के आक्षेप प्रस्तुत करते हुए जयन्त द्वारा मीमांसकों के मत का खण्डन प्रस्तुत करेंगे।

शब्द और अर्थ के मध्य मीमांसक स्वाभाविक और नित्य वाचक वाच्य भाव सम्बन्ध की सत्ता स्वीकार करते हैं। यद्यपि मीमांसक भी नैयायिकों की तरह यह स्वीकार करते हैं कि सामान्यतया तटस्थ व्यक्ति संकेतग्रह उत्तम वृद्ध द्वारा प्रयुक्त शब्द तथैव क्रिया देखने से प्राप्त करता है, इस प्रकार बालक अपने वृद्धों से शक्ति का ग्रहण करता है, और वह वृद्ध भी अपने वृद्धों से शब्दार्थ सम्बन्ध रूप इस शक्ति का ग्रहण किये होंगे; लेकिन इस परम्परा में अनवस्थदोष होने से आदि वृद्ध को खोज

पाना असम्भव है; इसलिए शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को अनादि और नित्य मानते हैं। इनका मत है कि शब्द में अर्थ प्रकाशन की स्वाभाविक शक्ति होती है। शब्द उच्चरित होते ही श्रोता में शक्ति के द्वारा अपने अर्थ को प्रकाशित कर देता है।[8]

नैयायिक भी संकेतग्रह परम्परा से मानते हैं; परन्तु उनके मत में यह परम्परा अनादि नहीं है, वरन् इसका प्रारम्भ ईश्वर से हुआ है। जिस प्रकार ईश्वर अपनी इच्छा मात्र से सृष्टि का निमित्त कारण बनता है, उसी प्रकार ईश्वर ने सृष्टि के आदि में सभी शब्दों में अर्थ प्रत्यायकता की सामर्थ्य जिसे शक्ति कहा गया है, उत्पन्न किया। जिस प्रकार हम अपनी इच्छा से अपनी किसी वस्तु का कुछ नाम रखते हैं। हमारी अमुक वस्तु, अमुक नाम से जानी जाय; या 'अमुक शब्द का अमुक अर्थ हो' यह शक्ति कल्पित करते हैं और इसी शक्ति के ग्रह के कारण तत्तत् शब्दों से तत्त्पदार्थों का बोध करते हैं, उसी प्रकार ईश्वर ने सृष्टि के आदि में सभी अर्थों के लिए शब्दों में अर्थ प्रकाशन की शक्ति उत्पन्न किया। इसलिए नैयायिक शब्दार्थ सम्बन्ध को समय या सङ्केत कहते हैं। नैयायिकों को अभिमत यह समय नित्य नहीं वरन् पुरूषेच्छाधीन है। न्याय मत पर मीमांसकों के ये आ़क्षेप हैं–

मीमांसक नित्य सम्बन्ध की सिद्धि के लिए न्याय मत का खण्डन करते हैं। मीमांसकों का यह कहना है कि नैयायिकों की तरह यह मानना युक्तिसंगत नहीं कि कोई ऐसा समय था जब शब्द का व्यवहार ही न रहा हो, ताकि सर्वप्रथम ईश्वर संकेत का निर्माण करें। वरन् शब्द में अर्थ वहन करने की स्वाभाविक शक्ति होती है, जिसे कोई उत्पन्न नहीं करता, यह शक्ति ही शब्द से अर्थ का प्रत्यय कराती है। जिस प्रकार दीपक से अर्थ का प्रकाश होता है। शब्द में शक्ति समवाय सम्बन्ध से रहती है, जिस प्रकार अग्नि में ज्वाला समवेत रूप से होती है।[9]

यदि यह स्वीकार किया जाय कि शब्दार्थ सम्बन्ध व्यक्तिकृत होता है और व्यक्ति की इच्छा के अधीन होता है तो यह ठीक नहीं; क्योंकि व्यक्ति की इच्छा उच्छृंखल होती है।[10] अतः इसके द्वारा शब्दार्थ प्रत्यायकता में व्यवस्था का होना आवश्यक नहीं होगा। अर्थ व्यवस्था व्यक्ति की इच्छा से नियमित नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति को जल की आवश्यकता है, अग्नि की नहीं; परन्तु धूमदर्शन से यह अग्नि का ही अनुमान करता है, जल का नहीं। यहाँ धूम और अग्नि के मध्य अविनाभाव नामक स्वाभाविक सम्बन्ध होता है, फिर भी अग्नि के ज्ञान के लिए धूम का भूयोदर्शन निमित्तान्तर अपेक्षित है, उसी प्रकार स्वाभाविक सम्बन्ध के होने पर भी, शब्द द्वारा अर्थ ग्रहण के लिए वृद्ध–व्यवहार के द्वारा सिद्ध संकेत रूप निमित्तान्तर का आश्रय लेना पड़ता है।

मीमांसक यह मानते हैं कि नैयायिकों को अभिमत अभिघानाभिधेय नियम रूप समय एक प्रकार का ज्ञान है। यह ऐसा ज्ञान है, जिसमें अभिधान द्वारा अभिधेय का प्रकाशन होता है। ज्ञान होने से यह आत्मा एक गुण होगा। न तो यह शब्द से ही सम्बद्ध होगा और न ही शब्द के द्वारा वाच्य किसी अर्थ से ही सम्बद्ध होगा।[11]

मीमांसक इस नित्य शब्दार्थ सम्बन्ध के पक्ष में तीन प्रमाण मानते हैं। पहला प्रत्यक्ष है। जैसे बृद्ध द्वारा प्रयुक्त शब्द और अर्थ को बालक प्रत्यक्षतः देखता है, दूसरा प्रमाण अनुमान प्रमाण है–वक्ता की चेष्टा आदि के द्वारा श्रोता के अर्थ ग्रहण का द्रष्टा बालक अनुमान करता है। तीसरा प्रमाण अर्थापत्ति प्रमाण है, वह इस प्रकार से कि शब्द में अर्थ की वाचक शत्ति होती है। इस शत्ति का ज्ञान शब्द द्वारा अर्थप्रत्यायकता की अन्यथा अनुपपत्ति से होता है।[12]

इस प्रकार न्याय पक्ष पर इन आक्षेपों के द्वारा मीमांसक समय या संकेत नामक अनित्य सम्बन्ध पर दोष दिखा करके नित्य शब्दार्थ सम्बन्ध की सिद्धि करते हैं।

जयन्त ने मीमांसक मत के विरोध में महत्पूर्ण आक्षेप–प्रत्याक्षेप प्रस्तुत किया है। यह कहना कि पद और पदार्थ का सम्बन्ध नित्य होता है, ठीक नहीं है; क्योंकि शब्द और अर्थ जिन प्रमाणों से गम्य है, उन प्रत्याक्षादि प्रमाणों से शब्द और अर्थ के मध्य का सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।[13] जयन्त ने मीमांसकों के आक्षेपों का इस प्रकार उत्तर प्रस्तुत किया है–

मीमांसक, जो सभी शब्दों में सभी अर्थों के प्रकाशन की सामर्थ्य स्वीकार करके किसी देश विशेष में शब्द विशेष का अर्थ विशेष में व्यवहार स्वीकार करते हैं, वह भी जयन्त के मत में ठीक नहीं। शक्तियों के स्वरूप में कथमपि भेद स्वीकार्य नहीं हो सकता। शब्द में समवेत होने के कारण शक्तियाँ शब्द स्वरूप से पृथक नहीं हैं; क्योंकि शब्द से भिन्न इनकी प्रतीत नहीं होती। शक्ति से अभेद होने के कारण एक शब्द से एक ही अर्थ प्रकाशित होगा। इस प्रकार शक्ति भेद सिद्ध न होने से शब्द में अर्थभेद न होगा। इसी प्रकार देशभेद होने पर भी अर्थभेद न होगा; क्योंकि शक्ति की एकरूपता सिद्ध है। यदि कार्यभेद से शक्तिभेद स्वीकार करें तो ठीक नहीं है; क्योंकि कार्यभेद की उपपत्ति शक्ति से भिन्न समय भेद आदि के द्वारा भी हो सकती है। यदि यह मानें कि प्रत्येक शब्द में सभी शक्तियाँ समवेत है, तो फिर सभी शब्दों से सभी अर्थों के वाचकत्व का प्रसंग आ जायेगा। यदि मीमांसक समयग्रह को शक्ति का नियामक मानें तो जयन्त का यह आक्षेप है कि तब समय को ही अर्थवाच्यता का हेतु क्यों न मान लें, शक्ति को मानने की आवश्यकता ही नहीं है।[14]

मीमांसक अपने शक्ति सम्बन्ध की तीन प्रमाणों से सिद्धि करते हैं; लेकिन यह ठीक नहीं है। शब्द और अर्थ के मध्य स्थित सम्बन्ध का वृद्ध व्यवहार में प्रत्यक्ष तथा सांकेतिक भाषा में अनुमान द्वारा सम्बन्ध ज्ञान तो नैयायिकों को भी अभीष्ट है; परन्तु तीसरा अर्थापत्ति प्रमाण नैयायिक स्वीकार नहीं करते। अर्थापत्ति का ग्रहण शब्द से वाच्यता की अन्यथानुपपत्ति द्वारा होने से शक्ति की सिद्धि स्वीकार की जाती है; परन्तु शब्द से अर्थ वाच्यत्व शक्ति के अभावों में अन्यथा भी उत्पन्न हो सकता है। समय से इसकी उपपत्ति की जाती है; अतः सम्बन्ध का निश्चय केवल प्रत्यक्ष और अनुमान से होता है, तीन प्रमाणों से नहीं; अतः शब्द और अर्थ में स्वाभाविक शक्त्यात्मक सम्बन्ध के अभाव के कारण यह समय सम्बन्ध, सृष्टि के आदि में ईश्वर द्वारा किये जाने से अनादि नहीं, वरन् सादि है।[1]

''ईश्वर समय को विरचित करता है,' इस न्याय पक्ष पर मीमांसकों के आक्षेपों का उत्तर देते हुए जयन्त कहते हैं कि मीमांसकों के आक्षेप सारगर्भित हो सकते थे, यदि हम जैसे अल्पज्ञ प्राणी संकेत करते; परन्तु संकेत का परिनिश्चय तो सर्वज्ञ ईश्वर द्वारा होता है। ईश्वर के पास अलोकिक तर्क और शक्ति है, जो अस्मद्विध प्राणियों के मस्तिष्क की कल्पनासीमा से परे है। इसी पूर्व सामर्थ्य द्वारा वह संकेत उत्पन्न करता है। जिस ईश्वर ने अचिन्त्य रचना रूप जगत् की रचना अपनी इच्छामात्र से कर डाली, उसके संकेत तथा व्यवहार की रचना भी उसकी इच्छामात्र से ही हो जाती है।[16]

इस प्रकार जयन्त, मीमांसकों को अभिमत नित्य–स्वाभाविक सम्बन्ध का खण्डन करते हुए तथा समय पक्ष के विरूद्ध मीमांसकों के आक्षेपों का समुचित समाधान प्रस्तुत करके नैयायिकाभिमत समय पक्ष का परिपोषण करते हैं। न्याय के इस सिद्धान्त के अनुसार शब्द और अर्थ के मध्य वर्तमान समय या संकेत सम्बन्ध नित्य या अनादि नहीं, वरन् यह सृष्टि के आदि में प्रारम्भ हुआ और प्रारम्भ में ईश्वर द्वारा उत्पन्न किया गया है। ईश्वर विरचित इस समय सम्बन्ध के ज्ञान का उपाय है, वृद्ध–व्यवहार। वृद्धों के व्यवहार से सम्बन्ध न जानने वाला बालक भी सम्बन्ध जान लेता है। शब्द और उसके प्रकाश्य अर्थ के मध्य इस सम्बन्ध को परवर्ती नैयायिक ईश्वरेच्छाजन्य होने की ही तरह पुरूषेच्छाजन्य भी मानते हैं। जगदीश तर्कालटार का मत है कि जब यह सम्बन्ध ईश्वरेच्छा से निर्मित होता है तब यह नित्य होता है और इसे 'अमिधा' या 'शक्ति' कहते हैं; परन्तु जब यह मनुष्य की इच्छा से स्थापित होता है तब इसे 'परिभाषा' कहते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची–

1. न्या0 भा0, 2/1/54
2. द्रष्टव्य–न्या0 म0, पृ0 220–21
3. शा.भा0, 1/1/4
4. न्या0 सू0, 2/1/54
5. वा0 प0, 1/1
6. रघुवंश, 1/1
7. आचार्य जयन्तभट्ट का शब्द–दर्शन, पृ0 सं0 142
8. वही, पृ0 सं0 142
9. न्या0 म0, भाग 1, पृ0 220
10. वही, पृ0 221
11. आ0 जयन्त ट्ट का शब्द'–दर्शन पृ0 सं0 144
12. श्लोक वार्तिक सम्बन्धाक्षेपपरिहारः: 140–42
13. न्या0 म0 भाग 1, पृ0 222
14. न्याय म0 भाग 1, पृ0सं0 224
15. न्या0 म0 भाग 1, पृ0 225
16. वही, पृ0 225